श्री तारतम वाणी

विरह के प्रकरण

(अर्थ सहित)

नित्य पाठ

विरह के प्रकरण

राग सिंधुड़ा

किरंतन प्रकरण ३५–४० उस समय उतरे, जब श्री जी मन्दसौर में सुन्दरसाथ सहित विरक्त भेष में विराजमान थे और कृपाराम जी उदयपुर का दुःख भरा समाचार लेकर आये। सुन्दरसाथ के कष्टों की निवृत्ति के लिये ये छः प्रकरण श्री महामति जी के धाम हृदय से फूट पड़े। इन प्रकरणों का श्रद्धापूर्वक पाठ सुन्दरसाथ को लौकिक कष्टों से छुटकारा दिलाता है।

वालो विरह रस भीनों रंग विरहमां रमाड़तो,

वासना रूदन करे जल धार।

आप ओलखावी अलगो थयो अमथी,

जे कोई हुती तामसियों सिरदार।।१।।

हे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! विरह का खेल देखने वाली, विरह के रस में डूबी हुई, हम आत्माएँ रोते हुए आँसुओं की धारा बहा रही हैं। प्रमुख तामसी सखियों में आप अपनी पहचान देकर ओझल हो गये हैं।

भावार्थ– यद्यपि रोने का कार्य जीव का है, आत्मा का नहीं। आत्मा तो मात्र द्रष्टा है, किन्तु जीव के तन द्वारा आत्मा का नाम लिये जाने से यह बात कही गयी है कि आपकी आत्मायें रो रही हैं। परमधाम की वाहिदत (एकदिली) में सरदार (प्रमुख) अथवा सात्विकी, राजसी, और तामसी का भेद नहीं है। ये सारी बातें व्रज, रास, एवं जागनी लीला से सम्बन्धित हैं।

कलकली कामनी वदन विलखाविया,

विश्वमां वरतियो हाहाकार।

उदमाद अटपटा अंग थी टालीने,

माननी सहुए मनावियो हार।।२।।

हे धनी! आपकी दुःखी अँगनाओं के चेहरों पर बिलख–बिलखकर रोने का करुण दृश्य है। इस समय सम्पूर्ण विश्व में दुःख फैलने से हाहाकार मचा हुआ है। आपने अपनी अँगनाओं के हृदय में जो इश्क के बड़ा होने का भाव था, उसे हटाकर हार मनवा ली है।

भावार्थ– "बिलखना" रोने की वह प्रक्रिया है, जिसमें जोर–जोर से सिसकियाँ आती हैं। अर्धांगिनी अपने प्रियतम से प्रेम का मान रखती हैं, इसलिये उसे मानिनी कहते हैं।

पतिव्रता पल अंग थाए नहीं अलगियो,

न कांई जारवंतियो विना जार।

पात्रियो पिउ थकी अमें जे अभागणियों,

रहियो अंग दाग लगावन हार।।३।।

इस संसार में पतिव्रता स्त्री एक पल के लिये भी अपने पति से अलग होना पसन्द नहीं करती तथा कोई प्रेमिका भी अपने प्रेमी से अलग नहीं रह पाती, किन्तु एक हम ऐसी अभागिन हैं, जो पतिव्रता कहलाने पर भी अपने प्रियतम से दूर (माया में) हैं और अपने प्रेम पर कलंक लगवा रही हैं।

स्या रे एवा करम करया हता कामनी,

धाम मांहें धणी आगल आधार।

हवे काढ़ो मोहजल थी बूडती कर ग्रही,

कहे महामती मारा भरतार।।४।।

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे प्रियतम्! हमने परमधाम में आपके प्रति ऐसा कौन सा खोटा कार्य किया था, जिसके परिणाम स्वरूप हमें ये दुःख भरे दिन देखने पड़ रहे हैं। अब आप भवसागर में डूबती हुई अपनी अँगनाओं को हाथ पकड़कर निकालिये।

।। प्रकरण ३५ ।।

हांरे वाला रल झलावियो रामतें रोवरावियो,

जुजवे पर्वतों पाड़्या रे पुकार।

रणवगडा मांहें रोई कहे कामनी,

धणी विना धिक धिक आ रे आकार।।१।।

हे मेरे वाला जी! इस खेल में माया ने हमें इतना दुःखी किया है और रुलाया है कि हम अलग–अलग पहाड़ों में जोर–जोर से बिलख रही हैं। दुःखों से तपने वाले इस रेगिस्तान रूपी संसार में रो–रोकर हम अँगनायें कह रही हैं कि हे धनी! आपके बिना इस शरीर को धिक्कार है, धिक्कार है।

वेदना विखम रस लीधां अमें विरह तणां,

हवे दीन थई कहूं वारंवार।

सुपनमां दुख सहया घणां रासमां,

जागतां दुख न सेहेवाए लगार।।२।।

हे धनी! आपके विरह में हमने असहनीय कष्टों का अनुभव किया है। अब हम दीन (यतीम, जिसके पास कुछ भी न हो) होकर आपसे बारम्बार यह बात कह रही हैं कि स्वप्न के ब्रह्माण्ड व्रज में ५२ दिन तक विरह का कष्ट देखा, और उससे भी अधिक विरह का कष्ट रास में अन्तर्धान लीला में देखा, किन्तु इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जाग्रत हो जाने पर थोड़ा भी विरह का कष्ट नहीं सहा जाता।

भावार्थ– व्रज में घर और सम्बन्ध का कुछ भी ज्ञान नहीं था। रास में सम्बन्ध का बोध तो था, किन्तु निज

घर का नहीं, इसलिये विरह सहन किया जा सका। जागनी ब्रह्माण्ड में सारे रहस्यों का पता चल जाने पर विरह का कष्ट असह्य होता है।

दंत तरणां लई तारूणी तलफियो,

तमें बाहो दाहो दीन दातार।

खमाए नहीं कठण एवी कसनी,

राखो चरण तले सरण साधार।।३।।

दुःखियों के हृदय में आनन्द रस का संचार करने वाले हे प्रियतम! आपकी अँगनाएं अपने दाँतों में तिनका दबाकर तड़प रही हैं। आप उनकी विरहाग्नि को बुझाइए। अब इस प्रकार की कठिन परीक्षा नहीं सही जाती। शरणागतों के जीवन के आधार, हे मेरे धाम धनी! आप अपनी अँगनाओं को अपने चरणों की छाँव में रखिए।

भावार्थ– "दाँतों में तिनका दबाना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है कि हम अपनी भूलों पर प्रायश्चित करते हैं। हमारे पास अब आपके प्रति बोलने के लिये कोई भी शब्द नहीं है। हम सुख या दुःख में धनी से कितना प्रेम करते हैं, यह हमारे लिये एक बहुत बड़ी कसौटी है।

हवे हारया हारया हूं कहूं वार केटली,

राखो रोतियो करो निरमल नार।

कहे महामती मेहेबूब मारा धणी,

आ रे अर्ज रखे हांसीमा उतार।।४।।

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे प्राण जीवन प्रियतम! अब मैं इसी बात को कितनी बार कहूँ कि मैं हार गई, हार गई। हमारा रोना–धोना बन्द कराकर अपने

प्रेम–रस से हमें निर्मल कीजिए और हाँ! मेरी इस प्रार्थना को आप अवश्य ही स्वीकार कीजिए। इसे हँसी में टाल मत दीजिएगा।

।। प्रकरण ३६ ।।

हांरे वाला बंध पड़्या बल हरया तारे फंदड़े,

बंध विना जाए बांधियो हार।

हंसिए रोइए पड़िए पछताइए,

पण छूटे नहीं जे लागी लार कतार।।१।।

हे वाला जी! आपके द्वारा इस खेल के फन्दे में आने से हम माया के बन्धनों में फँस गयी हैं। अब हमारी सारी शक्ति (ज्ञान, प्रेम, विवेक इत्यादि) क्षीण हो गयी है। देखने में कोई प्रत्यक्ष बन्धन तो नहीं दिखाई पड़ता , लेकिन सभी अँगनाएं पंक्तिबद्ध होकर किसी न किसी रूप

में माया से बँधी हुई हैं। इससे निकलने के लिये कोई कितना भी रोए, हँसे, या पश्चाताप करे, लेकिन माया का बन्धन ऐसा विकट है कि वह छूटता ही नहीं। इसमें फँसते जाने वालों की लम्बी पँक्तियां लगी हुई हैं।

जेहेर चढ़्यो हाथ पांउं झटकतियो,

सरवा अंग साले कोई सके न उतार।

समरथ सुखथाय साथने ततखिण,

गुणवंता गारुडी जेहेर तेहेने तेणी विधें झार।।२।।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर में जहर फैल जाने पर उसके सभी अंगों में पीड़ा होने लगती है, तथा वह अपने हाथों और पैरों को पटकने लगता है, उसी प्रकार हे धनी! हमारे इन तनों में भी माया का जहर फैल गया है, जिससे हम दुःखी हैं। इस माया के जहर को

कोई भी अन्य व्यक्ति उतारने में समर्थ नहीं है। जैसे कोई गुणवान ओझा अपने मन्त्र–बल से जहर को उतार देता है, उसी प्रकार आप ही तारतम वाणी के रस से हमारे विष को उतारने में समर्थ हैं। हे प्राणवल्लभ! हमें इसी क्षण विष से रहित कर दीजिए, ताकि हम सभी आनन्द में मग्न हो जायें।

भावार्थ– "हाथ–पाँव पटकना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है– व्याकुलता प्रकट करना। यहाँ यह कथन इस सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है कि जिस प्रकार विष से व्याकुल व्यक्ति विष न उतर पाने पर अपने हाथों और पैरों को झटकने लगता है, उसी प्रकार माया के विष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या) से व्याकुल सुन्दरसाथ प्रायश्चित् के रूप में अपने हाथ–पाँव पटक रहे हैं। बेहद वाणी ३१/१३७ में माया के विष को

उतारने के सम्बन्ध में कहा गया है–

तारतम रस बानी कर, पिलाइये जाको।

जेहेर चढ़या होय जिमीका, सुख होवे ताको।।

माहें धखे दावानल दसो दिसा,

हवे बलण वासनाओं थी निवार।

हुकम मोहथी नजर करो निरमल,

मूल मुखदाखी विरह अंग थी विसार।।३।।

इस संसार की दशों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, और नीचे) में विषयों की दावाग्नि जल रही है। इनमें झुलसने वाली आत्माओं को बचा लीजिए। हे प्रियतम! अपने हुक्म से इनकी दृष्टि को माया से हटाकर स्वच्छ कर दीजिए और अपना नूरी सुन्दर स्वरूप दिखाकर हृदय से

विरह के कष्ट को दूर कर दीजिए।

भावार्थ– वन में एक वृक्ष की अग्नि दूसरे वृक्ष तक पहुँच कर उसे भी जला देती है, विषय का विष भी उसी प्रकार है। विषयों का जितना ही सेवन किया जाये, दावाग्नि की तरह उनकी इच्छा उतनी ही बढ़ती जाती है। प्रियतम के मुखारविन्द के दर्शन से ही शान्ति मिलती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

छल मोटे अमने अति छेतरया,

थया हैया झांझरा न सेहेवाए मार।

कहे महामती मारा धणी धामना,

राखो रोतियों सुख देयो ने करार।।४।।

इस ठगिनी माया के लुभावने छल ने हमें बहुत अधिक ठगा है, जिससे हमारा हृदय छलनी हो गया है।

अब इसकी मार सही नहीं जाती। श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे धाम के धनी! अब हमारा रोना बन्द कराकर परमधाम का अखण्ड सुख दीजिए, जिससे हमारे हृदय को सुकून (शान्ति) मिल सके।

।। प्रकरण ३७ ।।

केम रे झंपाए अंग ए रे झालाओ,

वली वली वाध्यो विख विस्तार।

जीव सिर जुलम कीधो फरी फरी,

हठियो हरामी अंग इंद्री विकार।।१।।

हे धाम धनी! हृदय में उठने वाली विरह की लपटों को कैसे बुझायें? माया के विष का विस्तार तो दिन–पर–दिन बढ़ता ही जा रहा है। अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) एवं इन्द्रियों के हठी तथा पापी

विकारों ने जीव के ऊपर बारम्बार अत्याचार किया है।

भावार्थ– अन्तःकरण तथा इन्द्रियों के बिना जीव कोई भी कार्य नहीं कर सकता। इनके अन्दर उत्पन्न होने वाले विकारों से ही वह माया के बन्धन में फँस जाता है, अन्यथा अपने मूल रूप में वह मात्र द्रष्टा है।

झांप झालाओ हवे उठतियो अंगथी,

सुख सीतल अंग अंगना ने ठार।

बाल्या वली वली ए मन ए कबुधें,

कमसील काम कां कराव्या करतार।।२।।

हे धनी! आप हमारे हृदय से उठने वाली विरह की अग्नि की लपटों को बुझा दीजिए। अपने प्रेम का शीतल सुख देकर अँगनाओं के हृदय को पूर्ण रूप से तृप्त कर दीजिए। कुबुद्धि वाले इस मन ने हम अँगनाओं को बार–

बार माया में भटकाया है। न जाने क्यों हमसे माया में नीच कर्म कराये गये?

भावार्थ– "करतार" शब्द का प्रयोग यद्यपि अक्षर–अक्षरातीत के लिये होता है, किन्तु प्रश्न यह होता है कि क्या अक्षरातीत भी अपनी आत्माओं से खोटे कर्म करवा सकते हैं?

कदापि नहीं! इस चौपाई में करतार शब्द सम्बोधन है। यजुर्वेद में कहा गया है– "यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रीयते", अर्थात् जिस मन के बिना कोई भी कार्य नहीं होता। स्पष्ट है जिस मन को बारम्बार माया में फँसाने वाला कहा गया है, उसने ही ब्रह्मसृष्टियों के जीवों से खोटे कर्म करवाये, जिसका दाग ब्रह्मसृष्टियों के नाम के साथ जुड़ जाता है।

गुण पख इंद्री वस करी अबलीस ने,

अंगना अंग थाप्यो दई धिकार।

अर्थ उपले एम केहेवाइयो वासना,

फरी एणे वचने दीधी फिटकार।।३।।

इब्लीश ने हमारी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों), पक्ष (जाग्रत, स्वप्न्, एवं सुषुप्ति), एवं गुणों (सत्व, रज, एवं तम) को अपने अधीन कर लिया है। इस इब्लीश की बैठक हमारे दिलों में भी हो गयी है, लेकिन दोषी हमें ही ठहराया जा रहा है। यद्यपि बाह्य अर्थों में तो हमें ब्रह्मसृष्टि कहा जा रहा है , किन्तु इन शब्दों की शोभा देकर एक प्रकार से हमें लज्जित ही किया जा रहा है।

भावार्थ– कतेब परम्परा में "इब्लीश" का अर्थ होता है, वह शक्ति जो रूह को अल्लाह तआला से दूर करने का

प्रयास करे। वैदिक परम्परा में इसे कलियुग कहा गया है, जिसका तात्पर्य होता है, अज्ञान रूपी अन्धकार। मन में अज्ञान या तमोगुण का अन्धकार छा जाने पर वह चञ्चल हो जाता है, जिससे भक्ति दूर हो जाती है।

खुलासा में कहा है– "वेदे नारद कहयो मन विष्णु को, जाको सराप्यो प्रजापति।" कतेब परम्परा में जिस प्रकार अजाजील के मन की शक्ति इब्लीश है, उसी प्रकार वैदिक परम्परा में विष्णु के मन का रूप नारद है। वस्तुतः यह ऐतिहासिक प्रसंग न होकर आलंकारिक है। पौराणिक मान्यता में नारद जी को ब्रह्मा जी के श्रापवश सर्वत्र भ्रमण करते हुए दर्शाया गया है, किन्तु ज्ञान का प्रकाश मिलने पर नारद जी को वीणा के साथ आराधना एवं ध्यान करते हुए भी दिखाया गया है। तात्पर्य यह है कि मन में अज्ञान या तमोगुण आने पर परमात्मा से दूर

कर देता है, तथा ज्ञान और सात्विकता आने पर परमात्मा की ओर ले जाता है। "मनः एव मनुष्याणां बन्धन मोक्ष कारणम्।"

कतेब परम्परा में नमाज के समय इब्लीश के डर से तलवार रखने की बात नादानी है। इब्लीश अर्थात् मन के अन्दर के तमोगुण को हटाना ही इब्लीश को मारना है। इब्लीश को देहधारी (नारद आदि) मानना अनुचित है।

मांहेले माएने जोपे ज्यारे जोइए,

त्यारे दीधी तारूणी तन तछकार।

कलकली महामती कहे हो कंथजी,

एवा स्या रे दोष अंगनाओं ना आधार।।४।।

अन्दर के भावों से यदि देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि आपने हम अँगनाओं को इस माया में भेजकर

शरीर काटने जैसी पीड़ादायक सजा दी है। बिलखती हुई महामति जी कह रही हैं कि हे प्राणाधार प्रियतम! इसमें हम अँगनाओं का क्या अपराध है?

द्रष्टव्य– अक्षरातीत कभी भी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दे सकते। पीड़ादायक सजा पाने की बात केवल प्रेममयी उलाहने के रूप में कही गयी है।

।। प्रकरण ३८ ।।

हांरे वाला कांरे आप्या दुख अमने अनघटतां,

ब्राध लगाडी विध विध ना विकार।

विमुख कीधां रस दई विरह अवला,

साथ सनमुख मांहें थया रे धिकार।।१।।

हे मेरे प्रियतम! आपने हमें माया में कभी न समाप्त होने वाला दुःख क्यों दे दिया? हमारे दिल में विषय–

विकारों के अमिट रोग भी लगा दिये। अपनी शोभा एवं श्रृंगार के दीदार से दूर हटाकर उलटा विरह के ही दुःखदायी रस में डुबो दिया। इस प्रकार सुन्दरसाथ के बीच में मुझे लज्जित होना पड़ रहा है।

भावार्थ– माया से संयोग होने के कारण जीव को ही विषय–विकारों के रोग लगते हैं, आत्मा को नहीं। यह अक्षरातीत की नहीं, बल्कि माया की लीला कही जायेगी। चौपाई में लाक्षणिक एवं उलाहना देने की भाषा प्रयोग में लायी गयी है, इसलिए ऐसा प्रतीत हो रहा है।

अनेक रामत बीजी हती अति घणी,

सुपने अग्राह ठेले संसार।

उघड़ी आंख दिन उगते एणे छले,

जागतां जनम रूडा खोया आवार।।२।।

हे धनी! परमधाम में तो बहुत अधिक सुन्दर दूसरी रामतें भी थीं, लेकिन आपने हमें इस न रहने योग्य झूठे संसार में धकेल दिया (भेज दिया)। तारतम ज्ञान के उजाले में जब हम अपनी आँखें खोलकर जाग्रत हुए, तो यह स्पष्ट हुआ कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में आने का सुन्दर अवसर (सुन्दर जन्म) हमने खो दिया।

सनमुख तमसूं विरह रस तम तणो,

कां न कीधां जाली बाली अंगार।

त्राहि त्राहि ए वातों थासे घेर साथमां,

सेहेसूं केम दाग जे लाग्या आकार।।३।।

हे धनी! परमधाम के मूल मिलावा में तो मैं आपके सामने ही बैठी हुई हूँ, लेकिन इस संसार में मैं आपके विरह के रस में तड़प रही हूँ। आपने वहाँ ही मुझे विरह

की अग्नि में जलाकर अँगारा क्यों नहीं बना दिया ? अब इस संसार में दुःखों से बचने के लिए मैं जो त्राहि–त्राहि की पुकार कर रही हूँ, यह सारी बातें परमधाम में सुन्दरसाथ के बीच में होंगी। यहीं के तन के माध्यम से मेरे ऊपर गुनाहों का जो दाग लगा है, उसे मैं परमधाम में सुन्दरसाथ के बीच में कैसे सहन करूँगी?

विरह थी विछोडी दुख दीधां विसमां,

अहनिस निस्वासा अंग उठे कटकार।

दुख भंजन सहु विध पिउजी समरथ,

कहे महामती सुख देंण सिणगार।।४।।

मेरे प्रियतम! आपने अपने विरह से भी अलग करके इस मायावी संसार का कठिन दुःख दिया, जिसकी आहों से दिन–रात हमारे हृदय के टुकड़े–टुकड़े हो रहे हैं।

आप तो सभी प्रकार के दुःखों को मिटाने में हर प्रकार से समर्थ हैं। श्री महामति जी कहते हैं कि हे धनी ! आप अपने श्रृंगार का सुख हमें दीजिए, अर्थात् हमारे धाम हृदय में अपने नख से शिख तक के श्रृंगार सहित विराजमान हो जाइए।

भावार्थ– पूर्व की चौपाइयों में विरह के कष्टों का वर्णन किया गया है और इस चौपाई में विरह से भी हटाकर लौकिक कष्टों के भोगने का वर्णन किया गया है। कलस हिंदुस्तानी में कहा गया है– "एता सुख तेरे विरह में, तो सुख होसी कैसा विहार।" यद्यपि विरह का कष्ट सहा जा सकता है, क्योंकि उसमें पल–पल प्रियतम की सान्निध्यता का अहसास होता है, किन्तु धनी के विरह से रहित होकर माया का कष्ट सहना बहुत ही दुःखमयी है। जिस प्रकार दुःख में कलेजे के टुकड़े–टुकड़े होने की

बात की जाती है, उसी प्रकार यहाँ हृदय (दिल) के टुकड़े–टुकड़े होने का प्रसंग है।

।। प्रकरण ३९ ।।

हांरे वाला अगिन उठे अंग ए रे अमारड़े,

विमुख विप्रीत कमर कसी हथियार।

स्वाद चढ़या स्वाम द्रोही संग्रामें,

विकट बंका कीधा अमें आसाधार।।१।।

हे मेरे धनी! हमारे हृदय में प्रायश्चित की यह अग्नि जल रही है कि हमने आपसे विमुख होकर अपना प्रेम खो दिया है, तथा काम, क्रोध आदि मायावी विकारों के हथियार लेकर आपसे लड़ने के लिये तैयार हो गये हैं। हे प्रियतम! आपसे द्रोह रूपी युद्ध का हमें चस्का (स्वाद) लग गया है। इस प्रकार हमने बहुत ही भयंकर एवं उल्टा

काम किया है।

भावार्थ– इस चौपाई में प्रायश्चित की अग्नि के जलने का प्रसंग है न कि विरह की, क्योंकि विरह से ही प्रेम प्रकट होता है एवं प्रियतम का दीदार होता है, जबकि इस चौपाई में स्वयं को धनी से विमुख एवं प्रेम से रहित कहा गया है। निसबत की अवहेलना करके माया में डूबना ही धाम धनी से द्रोह करना है।

कुकरम कसाव जुध कई करावियां,

पलीत अबलीस अम मांहें बेसार।

जागतां दिन कई देखतां अमने छेतरया,

खरा ने खराब ए खलक खुआर।।२।।

हे धाम धनी! इस नीच इब्लीश को हमारे अन्दर बैठाकर आपने हमसे कई अनुचित युद्ध एवं खोटे कर्म

करवाये हैं। ज्ञान के उजाले में जाग्रत हो जाने पर भी इस इब्लीश ने हमें कई बार ठगा है। निश्चित रूप से यह सभी प्राणियों को पथभ्रष्ट एवं तिरस्कृत करने वाला है।

भावार्थ– धनी हमें माया से निकालना चाहते हैं और हम विषयों में फँसकर माया के अधीन हो जाते हैं। उस समय हमारे हृदय में धनी का प्रेम नहीं रह जाता। इसी प्रक्रिया को धनी से युद्ध करना कहते हैं। वाणी का ज्ञान होने पर भी यदि हमारे हृदय में प्रियतम के प्रति प्रेम नहीं है, तो यह मन रूपी इब्लीश हमें माया में भटका सकता है।

ओलखी तमने अमें जुध कीधां तमसूं,

मन चित बुध मोह ग्रही अहंकार।

ए विमुख वातों मोटे मेले वंचासे,

मलसे जुथ जहां बारे हजार।।३।।

मेरे प्राणवल्लभ! ज्ञान दृष्टि से आपकी पहचान कर लेने के बाद भी मैंने आपसे युद्ध किया, क्योंकि मेरे मन, चित्त, बुद्धि मोह एवं अहंकार से ग्रसित थे। यहाँ की बारह हजार ब्रह्मसृष्टि जब अपने मूल तनों में जाग्रत होंगी, तो हमारे द्वारा किये हुए इन उल्टे कामों की चर्चा सबके सम्मुख होगी।

कहे महामती हूं गांऊं मोहोरे थई,

पण विमुख विधो वीती सहु मांहें नर नार।

धाम मांहें धणी अमें ऊंचूं केम जोईसूं,

पोहोंचसे पवाड़ा परआतम मोंझार।।४।।

श्री महामति जी कहते हैं कि ये सारी बातें मैं आगेवान बनकर ही कह रही हूँ, किन्तु इस माया में उल्टी राह तो सब सुन्दरसाथ ने अपना रखी है। हे धनी!

सबसे चिन्तनीय बात तो यह है कि परआतम में जाग्रत होने के बाद यहाँ का सारा प्रसंग जब वहाँ वर्णित किया जायेगा, तो हम आपके सामने आँखें मिलाकर कैसे देखेंगे?

।। प्रकरण ४०।।